Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2020 SHISRRJ | Volume 3 | Issue 3 | ISSN : 2581- 6306

भवानी प्रसाद मिश्र के गीतिकाव्य की भाषा

डॉ. माया गोला
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, सोबन सिंह जीना विश्वविद्यालय, अल्मोड़ा, परिसर अल्मोड़ा, उत्तराखंड।

शोधसारांश – भवानी प्रसाद मिश्र जी की भाषा गीतात्मकता के नव परिप्रेक्ष्य को आयाम देती है। स्वयं मिश्रजी का भी मानना है कि जब तक मेरी भाषा मुझे ही प्रभावित न करे तो वह पाठकों तक अपना असर नहीं पहुंचा सकती है। उनकी भाषा में आत्मीयता, अंतरंगता व स्पष्टता का पूर्णतः समावेश मिलता है। उनकी भाषा बोलचाल की भाषा है किन्तु उनके जीवन का स्पदंन भी ध्वनित होता है जो कि उनके गहरे और विशिष्ट अर्थ को भी निकालता है।

मुख्य शब्द – भवानी प्रसाद मिश्र भाषा, गीतात्मकता, अंतरंगता, स्पष्टता, समावेश।

प्राचीन युग से ही हमारे यहाँ लोक साहित्य के रूप में गीतिकाव्य की परम्परा रही है। 'गीत' शब्द का मूलार्थ है–'गाया हुआ, अर्थात् गान या गायनोत्तर गुण (विशेषण)। इस तर्क का अवशिष्ट प्रमाण गीता के शब्दार्थ में भी है–'गायी हुई कथा।' यहाँ ध्यातव्य है कि पहले 'गेय' शब्द 'गायन–योग्य संरचना और ऐसी संरचना की 'गायन–योग्यता, दोनों अर्थों में प्रचलित था, जिसके पूर्व ही 'गान' संज्ञा और क्रिया की भूमिका में था। बाद में गायी हुई संरचना के लिए 'गीत' विशेषण प्रयुक्त हुआ। संभवतः 'गेयता' भी रचना मं गाने की परम्परा के द्वारा ही सिद्ध हुई। तभी पहले जनसमूह ने और बाद में आचार्यों ने 'गीत' विशेषण को ही गेय वस्तु के लिए संज्ञा की भूमिका में स्वीकृत किया। इस अर्थ में 'गीत' शब्द के रूढ़ होते ही 'गेय' शब्द संज्ञा की भूमिका छोड़कर विशेषण मात्र रह गया। जाहिर है कि 'गेय' शब्द कंठ–स्वर–संयोजन के अनेक प्रकारों में अगेय के विपरीत सारे प्रकारों का लक्षण है। **डॉ. नगेन्द्र** के अनुसार ''गीतिकाव्य की आत्मा है भाव, जो किसी प्रेरणा के भार से दबकर एक साथ गीति में फूट निकलता है। स्वभाव से ही उसमें हार्दिकता का तत्व विद्यमान रहता है। उसके एक प्रकार की एकसूत्रता तथा सुसंगठित एकता होती है, जो समस्त कविता को अन्वित किए रहती है। वह एक सख्त क्षणिक एवं तीव्र मनोवेग का परिणाम होती है।''[i]

भवानी प्रसाद मिश्र के काव्य की भाषा ही उनकी पहचान है। उनकी भाषा नई कविता की भाषा है। समकालीन परिस्थितियों की जटिलताओं और समाज को उन्होंने अपनी भाषा के माध्यम से कविता में रूपायित किया है। कविता में जब भाषा के परिप्रेक्ष्य सिमटने लगे तो युगीन कवियों ने भाषा को नव संस्कार और नव दिशा प्रदान की। यह आवश्यक था कि वह भाषा युग की जटिल परिस्थितियों को नव सरोकार, संस्कार और दिशा है। ''जब तक कवि के विचार जगत में गंभीर अभिव्यंजना के उपकरण अपने आप अस्वाभाविक, अधूरे, खंडित और रूप व्यक्तित्वहीन होंगे। भाषा जानबूझ कर बिगाडी या गढ़ी हुई होगी। जिसका व्यावहारिक जीवन से कोई सम्बन्ध न होगा।''[ii]

भवानी प्रसाद मिश्र जी की भाषा ने गीतात्मकता के नव परिप्रेक्ष्य को आयाम दिया है। भवानी भाई की कविता की भाषा उतनी नहीं है जितनी वह बोली है। स्वयं मिश्र जी का मानना है कि जब तक मेरी भाषा मुझे ही प्रभावित न करे तो वह पाठकों तक अपना असर नहीं पहुँचा सकती है। ''लिखना आखिरकर मेरा

बोलना है, मैं जो लिखता हूँ उसे जब बोलकर देखता हूँ और बोली उसमें बजती नहीं है तो मैं पंक्तियों को हिलाता.....डुलाता हूँ। बोलचाल की हिन्दी मेरी ताकत है।''[iii] यही कारण है कि मिश्र जी की कविता भाषा में आत्मीयता, अंतरंता, स्पष्टता का समावेश मिलता है। ये सभी विशेषताएँ उनकी भाषा को प्रांजल बनाती है। भाषा की एक खास विशेषता को देखा जाए तो वह है आत्मीयता। कवि और पाठक कविता के माध्यम से वहां एकाकार हो जाते हैं।

मिश्र जी ने भाषा का प्रयोग किसी विशिष्ट उद्देश्य गंभीर विषय व गूढ़ संदर्भ के लिए नहीं बल्कि मन की मौज में आकर चित्रण–वर्णन किया है। किन्तु हँसी के उलट 'कालजयी' खंडकाव्य में ऐसे प्रयोग गंभीर विषयों के प्रतिपादन के निमित्त चित्रित किए गए हैं। मिश्र जी का गीतिकाव्य मानवतावादी चेतना का काव्य है। उनका पूरा धरातल सामाजिकता की ओर व्यापक स्वरूप में है। अपने जीवन, जगत और समाज से उत्पन्न अनुभूतियाँ और संवेदनाएँ ही उनके गीतिकाव्य के विचार के रूप में प्रस्फुटित होती है।

नामवर सिंह ने इस विषय में लिखा है–''निसंदेह किसी कविता का सिरजा हुआ संसार ही उसका मूल्य है किन्तु उस मूल्य की प्रासंगिकता इस बात पर निर्भर है कि वह सिरजा हुआ संसार कितना वास्तविक है अथवा वास्तविकता के बारे में हमारी समझ को कितना गहरा और कितना समृद्ध करता है। हमारे आसपास के संसार को अर्थ प्रदान करने में ही किसी कविता के अपने संसार की सार्थकता है।''[iv]

मिश्र जी की भाषा में संस्कृत से लेकर तत्सम्, तद्भव, देशज, आंचलिक सभी प्रकार के शब्दों की भरमार है। उनके गीतिकाव्य में गांव की समस्याएँ हैं तो उसी तरह नगर के जीवन, उसकी विषमताएँ, विद्रूपताएँ, खट्ठे–मीठे अनुभव भी मिश्र जी के गीतिकाव्य में हैं। व्यक्ति, उसके जीवन मूल्य उसके संघर्ष, सफलता–विफलताएँ, संघर्ष आदि भी उनके काव्य का हिस्सा है।

मिश्र जी शब्द को मात्र शब्द न मानकर उसके भीतर के छिपे अर्थ व विचार को उजागर करने और अपने गीतिकाव्य में प्रयुक्त करने वाले समर्थ रचनाकार है। ''हिन्दी काव्य–भाषा को मिश्रजी का सबसे बड़ा दाय यह है कि उन्होंने साहित्यिक भाषा और सामान्य बोलचाल की भाषा के पार्थक्य को मिटा दिया है। उनका काव्य की भाषा की विशिष्टता यह है कि बोलचाल की भाषा को लिखने के लिए कवि को साधु भाषा का परिहार नहीं करना पड़ता और संस्कृत निष्ठा भाषा लिखने के लिए फारसी से झगड़ा नहीं करना पड़ता।''[v]

मिश्र जी ने अपनी कविताओं के माध्यम से यह अभिव्यक्त कर दिया है कि वे न तो बहुत संशिलष्ट, शब्दावली को अपने कविताओं में स्थान देते हैं और न ही उनकी कविताओं में भारी–भरकम शब्द हैं। वे कविताओं में सहज शब्द प्रयुक्त करते हैं। उनकी अनुभूतियाँ, उनकी रचनाओं में विलक्षण रूप से प्रस्तुत होती है।

रामधारी सिंह दिनकर ने कहा है कि ''शब्द चयन की कसौटी पर कवि कला की जैसी परीक्षा होती है वैसी अन्यत्र नहीं हो सकती। शब्दों का स्वभाव है कि प्राचीन होते–होते वे अपनी ताजगी, शक्ति और सुन्दरता खो बैठता हैं। अधिक प्रयोग से उनमें एकरसता आ जाती है और उनका अर्थवृत्त संकुचित हो जाता है। कवि नवीन प्रयोगों के द्वारा उसके सौन्दर्य और शक्ति को पुनर्जीवित करता है। भाषा पर शब्द के अभाव का लांछन लगाकर जो कवि निरंकुशता का दावा करता है, वह शक्तिशाली नहीं हो सकता है। उसकी प्रतिभा सीमित है। अतएव उसे दुर्बल कहना चाहिए। सच्चे कवि नए शब्द भी गढ़ते हैं और प्राचीन शब्दों की पूरी शक्ति को नवीन तथा प्रतिभापूर्ण प्रयोगों के द्वारा जागृत और प्रत्यक्ष करके भाषा को बढ़ाते हैं। शब्दों के रूप, गुण व ध्वनि से जितना सम्बन्ध कवि को है उतना किसी अन्य साहित्यकार को नहीं। अतएव भाषा की अभिव्यंजना शक्ति की वृद्धि कवि को करनी ही चाहिए। जिसमें वह शक्ति नहीं है, उसे कवि कहकर हम कवि प्रतिभा का अनादर करते हैं।''[vi] इस प्रकार के संदर्भ में उनके काव्य के विचार को रेखांकित करती एक प्रभावी कविता इस प्रकार है–

''उस निराली रात में जब
चाँद तारों से घिरा था,
जब सुरभी के बीच पलकर फूल डाली पर गिरा था
नीलिमा आकाश की जब वायुमंडल में छिदी थी
बांस के धनकुंज में पड़कर
किरन धँस जा रही थी
और
कंटीली झाड़ियों में दृष्टि फँस जा रही थी।''[vii]

कवि की भाषा और उसके काव्य विषयक विचार ही रचनाकार की गहराई, समाज, संस्कृति, परम्परा और सरोकार को दर्शाती है। भाषा रचनाकार को परम्परा से प्राप्त होती है और जागरूक रचनाकार उसे नए तेवर एवं संदर्भ प्रदान करता है।

''भाषा हमारे अंतर्गामी अनुभवों को परिभाषित करने और इस परिभाषित बोध को अभिव्यक्त करने का मूल माध्यम है।''[viii]

भाषा की व्यापकता और प्रभावशाली क्षमता के कारण ही डॉ. नामवर सिंह ने लिखा है ''परिवेश का बोध भाषा की क्षमता पर निर्भर है। भाषा शक्ति उसकी बोध शक्ति का प्रभाव है। व्यक्ति का अपना भाषा संसार ही अनुभव का संसार है। इसलिए अनुभव संसार के विस्तार के लिए भाषा संसार का प्रसार आवश्यक शर्त है।''[ix]

रामविलास जी ने कहा है ''मनुष्य को भाषा से अलग करके नहीं देखा जा सकता है। अक्सर विद्वान भाषा की उत्पत्ति और विकास को मानव की उत्पत्ति और विकास के समानान्तर रख कर ही देखा है।''[x] स्वयं मिश्र जी ने कहा है ''मुझे वर्डरवर्थ की एक बात बहुत पटी है कि कविता की भाषा सहज रखी है।''[xi] अपने विचार के रूप में मिश्र जी ने स्वयं कविता में लिखा –

''मैं उन्हें सिर्फ बरतूँ नहीं
उन्हें जिऊँ
बात कठिन है
लेकिन करना चाहिए
शब्दकार को
अगर जरूरत पड़े
तो अपने शब्दों पर
मरना चाहिए।''[गपप]

गीति काव्य के संदर्भ में उनके विचार सदैव यही रहे है– कवि पहले शब्दों से खिलवाड़ करता था और बैन को बानों के सिलसिले बनाता था। किन्तु तब शब्दों का धरातल वैयक्तिक था। वे कवि के इशारे पर नाचते थे। अब लेकिन स्थिति बदल गई, शब्द अकड़ने लगे, कवि की ही न सुनकर अपनी भी सुनाने लगे–

''कहते हैं, अब हमें तुम
अपने ही हक में बरतना बंद करो
हमें तुम दीवारों का नहीं
अब मैदानों का छंद करो
फैलाओं हमें
जैसे किसान फैलाता है बीजों को।।''[xiii]

शब्द एक अभिव्यक्ति भर नहीं है किन्तु अपने आप में यथार्थ का बिम्ब भी है। यूं तो शब्द कोश से हम अनेक बड़े–बड़े लुभावने और महत्वपूर्ण से दिखाई पड़ने वाले शब्द ले सकते हैं। उन्हें मिलकर छंद या अछंद के माध्यम से एक अनुगूंज भरा संसार खड़ा कर सकते हैं। किन्तु यह संसार निरर्थक होता है क्योंकि ये शब्द किताबी अर्थ तो देते हैं किन्तु ये जीवन के अर्थ से रिक्त होते हैं–

''जिस तरह से हम बोलते हैं
उस तरह तू लिख
और इसके बाद भी
हम से बड़ा तू दिख''

''मैं जो लिखता हूँ उसे जब बोलकर देखता हूँ और बोली उसमें बजती नहीं तो मैं पंक्तियों को हिलाता–डुलाता हूँ। बोलचाल की हिन्दी मेरी ताकत है।''[xiv]

निष्कर्ष रूप में देखें तो उनके गीति–काव्य से संबंधित विचारों को यह कविता उद्घाटित करती है।

''पुरानी आदिम
चिन्गारी की तरह
फिकना चाहिए
अर्थ
पुराने से पुराने शब्दों में से
नए संदर्भ में.....संदर्भ पुराने हो सकते हैं
नए हो सकते हैं
''यह संयोग है
कि मन मेरा
आज एक नया संदर्भ है
मगर फेंकना तो चाहिए
पुराने ही शब्दों से
नए इस संदर्भ की चिनगारी।''[xv]

मिश्र जी ने स्वयं एक साक्षात्कार में कहा था कि जहाँ तक मेरा सवाल है कह सकता हूँ कि मैंने शब्द सम्मान, शब्द रक्षा, शब्द कल्याण या शब्द की ब्रह्म शक्ति की लड़ाई लड़ी है।

निष्कर्षतः भवानी प्रसाद मिश्र जी की भाषा गीतात्मकता के नव परिप्रेक्ष्य को आयाम देती है। स्वयं मिश्रजी का भी मानना है कि जब तक मेरी भाषा मुझे ही प्रभावित न करे तो वह पाठकों तक अपना असर नहीं पहुंचा सकती है। उनकी भाषा में आत्मीयता, अंतरंगता व स्पष्टता का पूर्णतः समावेश मिलता है। उनकी भाषा बोलचाल की भाषा है किन्तु उनके जीवन का स्पदंन भी ध्वनित होता है जो कि उनके गहरे और विशिष्ट अर्थ को भी निकालता है। भाषा के अनुरूप ही उनके शब्द उनकी उदार दृष्टि के परिचायक है, जो कि उन्हीं की रचना को प्रकृति के अनुरूप परिवर्तित करते है। इनके शब्द जीवन के पक्षों को विविध रूपों में संजोते है। भवानी मिश्र के शब्दों के मामले में सदैव यह सरलता रही है कि वे तत्सम् शब्दों के बदले सरल रूप को काम में ले, जिससे उनकी भाषा में सहजता प्रकट होकर अनुभूतियों को सहज रूप से ग्रहण करने योग्य हो जाए। आंचलिक शब्दों का बहुतायत रूप से प्रयोग उनके काव्य में माधुर्यता व रसास्वादन को अभिव्यक्त करता है, क्योंकि जब पाठक कविता पढ़ता है जो उसे भाषा की अंतरंगता उसमें महसूस होती है। भवानी मिश्र का गीतिकाव्य चेतना काव्य रहा है, जिसमें शब्द भी अर्थ व विचार को उजागर करने की क्षमता रखते हैं। मिश्रजी की रचनाओं में भाषा की विशेषताओं के साथ प्रतीक योजना अभिनव है। उनके गीतिकाव्य में आए प्रतीक उनके अनुभवों का ही शाब्दिक प्रतिफलन है।

संदर्भ

[i] गुप्त, शान्तिस्वरूप, साहित्यिक निबंध, अशोक प्रकाशन, दिल्ली, 1999, पृ. 227

[ii] माथुर, गिरिजा कुमार, धूप के धान, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 1998, पृ. 11, 12

[iii] मिश्र, भवानी प्रसाद, बुनी हुई रस्सी, भूमिका, सरला प्रकाषन, दिल्ली–32, 1984, पृ. 12

[iv] सिंह, नामवर, कविता के नए प्रतिमान, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016, पृ. 232

[v] शर्मा, हरिचरण, नई कविता के नये धरातल, पृ. 67

[vi] दिनकर, रामधारी सिंह, मिट्टी की ओर, लोकभारती प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010, पृ. 151

[vii] मिश्र, भवानी प्रसाद, गीत फरोश, सरला प्रकाशन, दिल्ली, 1956, पृ. 87

[viii] तिवारी, अजय, प्रगतिशील कविता के संदर्भ मूल्य, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016, पृ. 237

[ix] तिवारी, अजय, प्रगतिशील कविता के संदर्भ मूल्य, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016, पृ. 236

[x] तिवारी, अजय, प्रगतिशील कविता के संदर्भ मूल्य, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016, पृ. 378

[xi] मिश्र, भवानी प्रसाद, दूसरा सप्तक, पृ. 45

[xii] मिश्र, भवानी प्रसाद, गीत फरोश, सरला प्रकाशन, दिल्ली, 1956, पृ. 10

[xiii] मिश्र, भवानी प्रसाद, गीत फरोश, सरला प्रकाशन, दिल्ली, , पृ. 15

[xiv] अज्ञेय, आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि, राजपाल एण्ड सन्स, नई दिल्ली, पृ. 14

[xv] अज्ञेय, आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि, राजपाल एण्ड सन्स, नई दिल्ली, पृ. 14